ISSN-2230-7540

नवीन वामपंथ और क्रान्ति सम्बन्धी अवधारणा

KM. Shalu*

Research Scholar

Chaudhary Charan Singh University

Meerut, India

प्रस्तावना

क्रान्ति की अवधारणा आधुनिक चिन्तन में विशिष्ट स्थान रखती है। समाज की जिन विसंगतियों ने 'इसके' उद्भव एवं विकास में योगदान दिया है, एवं व्यापक सामाजिक हित के संदर्भ में इसकी अपरिहार्यता भी सिद्ध की है, वहीं सामाजिक ऐतिहासिक प्रसंग और परिस्थितियाँ आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है, और यही तथ्य आज भी क्रान्ति की अवधारणा को प्रासंगिक बनाते हैं। इसलिए, विगत शताब्दी को जिस प्रकार साम्राज्यवाद के प्रसार का काल कहा गया है, उसी प्रकार वर्तमान सदी को यदि–सिद्धांत एवं व्यवहार में – क्रान्तियों का युग कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी।

समाज–व्यवस्था में त्वरित मूलगामी परिवर्तन को क्रांति की संज्ञा से संज्ञापित किया जा सकता है। यह मानव जाति के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन में बुनियादी मोड़ का प्रतीक होता है जो उनके सम्पूर्ण जीवन–पद्धति और तद्नरूप सम्पूर्ण सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक पद्धति को ही नयी व्यवस्था के अनुरूप परिवर्तित कर देता है। नया सामाजिक परिवेश नये जीवन मूल्यों को समाज में स्थापित करता है। इस प्रकार यह, ''सामाजिक ढाँचे, अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति में नूतन विकास का द्योतक है।''

सामाजिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन गैर क्रान्तिकारी यथा, संवैधानिक परिवर्तनों के द्वारा जैसा कि इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ति थी, और क्रान्तिकारी साधनों द्वारा यथा फ्रांसीसी क्रान्ति सम्भव हो सकती है। किन्तु, सामाजिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन दो तरह से सम्भव हो सकता है। पहला ''गैर क्रान्तिकारी'' जैसे कि इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ति थी, जो संवैधानिक परिवर्तनों के द्वारा हुई। दूसरा, 'क्रान्तिकारी, जैसे कि फ्रांसीसी क्रान्ति हुई। क्रान्ति का जो भी स्वरूप हो या स्वभाव हो, यह जरूरी है कि उत्पादन–सम्बन्धों में आमूल परिवर्तन हो और यह अन्य बुनियादी परिवर्तनों का मार्ग प्रशक्त करें। इसके लिए 'यह' सर्वप्रथम मौजूदा राजनीतिक सत्ता को हस्तगत कर स्थापित व्यवस्था के कानूनी ढांचे का विध्वंस करती है और नयी शासन–पद्धति लागू करती है। यह राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि, मानव–जीवन के प्रत्येक क्षेत्रा में नए परिवर्तनों की सामान्य प्रक्रिया को तीव्र कर देती है। इस दृष्टि से यह समाज के ऐतिहासिक विकास का प्रतिपफल है। क्रान्ति का कारक स्थापित सामाजिक व्यवस्था में विसंगतियों का होना है। ये विसंगतियाँ 'उत्पादन–सम्बन्धों' के अन्तर्विरोधा के कारण पैदा होती है। इस प्रकार 'उत्पादन और वितरण से उत्पन्न विसंगतियाँ सामाजिक असंतोष का रूप धारण कर नयी व्यवस्था के लिए जमीन तैयार करती हैं और क्रान्ति को जन्म देती हैं। क्रान्ति अर्थात् नए उत्पादन–व्यवस्था की सपफलता के लिए व्यापक जनता की सहभागिता महत्वपूर्ण एवं निर्णायक होती है।

मैकाइवर का कथन युक्तिसंगत है कि क्रान्ति द्वारा राज्य का पुर्ननिर्माण तभी स्थायी रह सकता है जब राज्य की सामान्य इच्छा का उसे वरदहस्त प्राप्त हो। क्रान्ति का क्षेत्रापफल व्यापक है इस व्यापकता के दो स्वरूप हैं– प्रथम क्रान्ति से तभी 'क्रान्ति' का बोधा होता है जब समाज के बड़े भाग की सहभागिता हो, और द्वितीय जब क्रान्ति के द्वारा सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्रा में परिवर्तन प्रभावी हो।

कभी–कभी सतारूढ़ शासन तंत्रा में परिवर्तन को भी क्रान्ति कह दिया जाता है। किन्तु, यह क्रान्ति नहीं अपितु राज्य–विप्लव होता है जिसके पफलस्वरूप पुराने शासकों के स्थान पर नए शासक–सत्ता पर अपना अधिकार कर लेते हैं (जो कि वस्तुतः एक ही वर्ग से सम्बन्धित होते हैं) इससे समाज–व्यवस्था के किसी भी पक्ष में या जनता के सामाजिक जीवन में किसी भी प्रकार का मूलगामी परिवर्तन नहीं होता है। इस प्रकार

मध्ययुगीन काल में राजपरिवारों के, सत्ता प्राप्ति के लिए हुए, आपसी षडयंत्रा या विद्रोह को क्रान्ति नहीं कहा जा सकता भले ही इसके परिणामस्वरूप सत्ता का हस्तांतरण ही क्यों न हुआ हो। इसके अतिरिक्त कभी–कभी सैनिक अधिकारी सेना के बल पर राजसत्ता पर कब्जा कर लेते हैं। यह भी क्रान्ति नहीं विप्लव मात्रा है, जिसमें समाज के कुछ सीमित लोग ही हिस्सा लेते हैं और सर्वसाधारण इससे अछूते ही रहते हैं। इस प्रकार के सत्ता परिवर्तन में मात्रा शासक या शासकगण बदलते हैं और सामाजिक सरंचना और जीवन–पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं होता। विप्लव की तुलना में राष्ट्रीय क्रान्तियों में मूल्यांतरण अधिक व्यापक होते हैं। सकल राष्ट्रीय क्रान्ति, राष्ट्रीय तत्वों को विदेशी सत्ता के दमन चक्र से मुक्त कर देती है। किन्तु इस प्रकार की क्रान्ति के साथ जब तक कि सामाजिक क्रान्ति न हो, तब तक समाज का निचला वर्ग उत्पीड़ित एवं दलित वर्ग– जो अंकिचन और निरक्षर है और इसी कारण अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं है– राष्ट्रीय स्वतन्त्राता के लाभों से वंचित ही रह जाता है।

सामाजिक क्रान्ति, इन दोनों प्रकार की क्रान्तियों से, जिनमें मात्रा परिवर्तन होता है सत्ता–परिवर्तन या शासकों की अदला–बदली, भिन्न है। सामाजिक क्रान्ति में राजनीतिक सत्ता–परिवर्तन तो शामिल रहता ही है, किन्तु इसके साथ ही साथ सामाजिक अधिसरंचना भी परिवर्तित हो जाती है। इंग्लैण्ड की सन् 1688 की क्रान्ति, जिसने संसद की प्रभुसत्ता स्थापित की, मात्रा राजनीतिक क्रान्ति नहीं थी क्योंकि इसके द्वारा नयी उत्पादन–व्यवस्था से उत्पन्न मध्यम वर्ग शासक वर्ग के समकक्ष आ गया तथा तुलनात्मक दृष्टि से इस वर्ग के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विशेषाधिकार बढ़ गए। किन्तु, इसके बावजूद इसे पूर्णतः सामाजिक क्रान्ति की संज्ञा इस कारण नहीं दी जा सकती क्योंकि इसके लाभों से समाज का एक बड़ा हिस्सा–किसान, मजदूर और दस्तकारों का वर्ग – वंचित ही रहा।

साहित्यिक की समीक्षा

अनुसंधान के आधार पर नित नवीन वैज्ञानिक तथ्यों, सामान्य नियमों तथा सिद्धान्तों की रचना होती रहती है, तथा पूर्व स्थापित सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति तथा पुष्टि नवीन उपकरणों तथा नवीनतम् विकसित प्रविधियों द्वारा होती रहती है। इस कारण अनुसंधान से मानव व ज्ञान भण्डार दिन प्रतिदिन विकसित होता रहता है। शोध से न केवल भौतिक विज्ञानों में ही प्रगति हुई है वरन इससे अन्य विज्ञानों विशेषकर सामाजिक विज्ञानों में भी महान क्रान्तिकारी प्रगति हुई है।

शोध से न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही विकसित होता है, बल्कि इससे अनेक व्यवहारिक समस्याओं के समाधन में भी उल्लेखनीय सहायता प्राप्त हुई है।

आज के युग में प्रशासन का कार्य जीवन के हर क्षेत्रा में अत्यन्त विषम तथा विस्तृत होता जा रहा है, जिसके कारण प्रशासक तथा नीति निर्धारक का काम बहुत ही जटिल हो गया है। सामाजिक, औद्योगिक व ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की समस्याओं, भावनाओं तथा प्रक्रियाओं का जब तक उचित ज्ञान प्रशासक को नहीं होता, तब तक वह प्रशासन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों के लेने तथा निर्धारणों के काम में कुशल व सपफल सिद्ध नहीं होता सम्बन्धित आँकड़ों के अभाव में उसके मस्तिष्क में एक प्रकार का अन्ध्कार सा रहता है परन्तु अनुसंधान से आवश्यक जानकारी प्राप्त होने पर ही उसे नीति सम्बन्धी वह प्रकाश मिलता है जिससे नीति सम्बन्धी कार्यों में उसका मार्ग दर्शन होता है। अनुसंधानों के आधार पर अनेक प्राचीन पूर्वाग्रहों के मूलरूप को समझने तथा उसके उन्नमूलन में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है।

नवीन अनुसंधानों से न केवल विभिन्न विज्ञानों का ही विकास हुआ है बल्कि इससे मानव व्यक्तित्व का भी विकास हुआ है।

इस प्रकार अनुसंधान में मानव व्यक्तित्व को बौद्धिक रूप से विकसित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अनुसंधान के क्षेत्रा में सामाजिक अनुसंधान को पूरा करने में प्रश्नावली एवं अनुसूची प्रणाली का प्रयोग अति व्यापक है और कुछ भिन्नताओं को छोड़कर दोनों में अत्यध्कि समानता भी पाई जाती है जहाँ प्रश्नावली को अध्ययन कर्त्ता की अनुपस्थिति में सूचना–दाता स्वयं भरता है वहाँ अनुसूची पद्धति में प्रश्नों के उत्तर सूचना दाता के साथ प्रत्यक्ष साक्षात्कार एवं अवलोकन द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। इस दृष्टिकोण से अनुसूची अवलोकन प्रणाली का भी एक सयंत्रा हैं राजनीति विज्ञान में आज अवलोकन को अधिकाध्कि महत्व मिलता जा रहा है ऐसी स्थिति में प्रश्नावली द्वारा क्षेत्रा से हटकर किसी विषय का गहन एवं यथार्थ अध्ययन नहीं किया जा सकता है। प्रश्नावली का उपयोग सामग्री के लिये किया जाता है लेकिन अनुसूची एक ऐसे प्राथमिक क्षेत्रा के रूप में विकसित हुई है जिसके अनुसार अध्ययनकर्ता स्वयं क्षेत्रा में उपस्थित होकर सामग्री संग्रहण करता है। यथार्थ सामग्री संग्रहण (संकलन) की यह अत्यन्त उपयोगी पद्धति है।

जीवन मेहता ने अपनी पुस्तक राजनीतिक चिन्तन का इतिहास में मनुष्य के राजनीतिक विकास के प्रारम्भ से लेकर आज तक राज्य–क्रांति राजनीतिक दृष्टि से संगठित समाज के लिए एक मूलभूत समस्या के रूप में विद्यमान रही है यह बहुरंगी चित्रा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। क्रान्ति के मूल कारण सामाजिक व्यवस्था के दोषों में निहित होते हैं। जब वे असाध्य हो जाते है तो क्रान्ति के द्वारा सामाजिक व्यवस्था की शल्य क्रिया करके रोगी अंगो को काटकर पफेंक दिया जाता है और इस तरह समाज व्यवस्था को एक नया रूप प्रदान किया जाता है। कुछ मनुष्य ऐसे होते है जिनके हृदय समानता की भावना से ओत–प्रोत होते हैं। अतः वे इस आधार पर विद्रोह खड़ा करते हैं कि यद्यपि वे उन लोगों के समान है जो कहीं अधिक धन सम्पत्ति पाये हुए हैं तथापि उनको स्वयं अन्य लोगों से सुविधाऐं प्राप्त हैं। इस प्रकार छोटे व्यक्ति बराबर होने के लिए विद्रोही बना करते है और बराबर स्थिति वाले बड़े मानने के लिए। यही वह मनोदशा है जिससे क्रान्तियों की उत्पत्ति होती हैं।

ISSN-2230-7540

ब्ला इ. लेनिन ने अपनी पुस्तक ''राज्य और क्रान्ति, में बताया है कि ''राज्य का जन्म वर्ग–विरोधी को काबू में रखने की जरूरत से हुआ था, इसके साथ ही चूंकि उसका जन्म खुद इन वर्गों के टकरावों के बीच हुआ था, इसलिए वह आमतौर से सबसे ताकतवर, आर्थिक रूप से प्रभुत्वशील वर्ग का राज्य होता है, जो राज्य के जरिए राजनैतिक रूप से भी प्रभुत्वशील वर्ग बन जाता है इस शांति उत्पीड़ित वर्ग दमन और शोषण के नये साधन पा लेता है, केवल प्राचीन और सामन्ती राज्य ही दासों और भूदासों के शोषण के अस्त्रा नहीं थे'', ''बल्कि आज का प्रतिनिधि मूलक राज्य भी पूंजी द्वारा उजरती श्रम के शोषण का अस्त्रा है। लेकिन अपवाद के रूप में ऐसे वक्त भी आते हैं जब संघर्षरत वर्गों की ताकत ऐसी समतुल्यता प्राप्त कर लेती है कि राज्यसत्ता उस वक्त के लिए दोनों वर्गों के सम्बन्ध में प्रतीयमान बिचवैया के रूप में किसी कदर स्वाधीनता प्राप्त कर लेती है'' सत्राहवीं अठारहवीं शताब्दियों के निरकुंश राजतंत्रा, फ्रांस में प्रथम और द्वितीय साम्राज्यों की बोनापार्तशही और जर्मनी में बिस्मार्क ऐसे ही थे। सर्वहारा वर्ग ही–बड़े पैमाने के उत्पादन में अपनी आर्थिक भूमिका के कारण–उस तमाम श्रमजीवी और शोषित जनता का नेतृत्व कर सकता है, जिसका पूंजीपति – वर्ग सर्वहारा से कम नहीं, बल्कि अक्सर ज्यादा शोषण, उत्पीड़न और दमन करता है, लेकिन जो अपनी स्वाधीनता के लिए स्वतंत्रा रूप से संघर्ष चलाने में असमर्थ होती है।

वैज्ञानिक समाजवाद के मूलतत्व में लेखक अपफनास्मेव, मकारोवा और ल. म. मिनायेव ने अपने विचार प्रस्तुत किये है कि निःसन्देह, मजदूर वर्ग विद्यमान स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता। वह अपने उत्पीड़िकों–पूँजीपतियों के विरूद्ध उठ खड़ा होता है। मजदूरों और पूँजीपतियों के बीच वर्ग–संघर्ष अनिवार्य है, यह समाज में इन वर्गो की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में परस्पर विरोध तथा इस परिस्थिति को बदलने के लिए मजदूर वर्ग की सहज आकांक्षा का स्वभाविक परिणाम हैं। निजी स्वामित्व और शोषण का उन्मूलन करके मजदूर वर्ग उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व की प्रणाली, एक नयी सामाजिक प्रणाली–समाजवाद को कायम करती है। वस्तुतः समाजवादी क्रान्ति के मूल कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, पूंजीवादी उत्पादन के सारतत्व में ही निहित है। इन कारणों को प्रकट करने के लिये समाज के जीवन और विकास में भौतिक उत्पादन जो भूमिका अदा करता है, उसका चाहे संक्षेप में ही सही, वर्णन करना आवश्यक है।

रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक ''भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद खण्ड एक'' में रियासतों की जनता के संघर्ष की सुलह–समझौते की ओर मोड़ देने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। लेकिन इसके साथ–साथ किसानों और औद्योगिक मजदूरों के गैर पार्लियामेण्टरी संघर्ष की शक्तियाँ बढ़ी हैं, रियासतों में राजनीतिक और आर्थिक शोषण के पुरानपन्थी रूपों के विरूद्ध जनता के विद्रोह बढ़े हैं। जिस हद तक मजदूर वर्ग राजनीतिक रूप में सक्रिय होता है, उस हद तक राष्ट्रीय मोर्चे के संयुक्त नेतृत्व में सन्तुलन बदलेगा और एक सुसंगत क्रान्तिकारी जनवादी नेतृत्व का पलड़ा भारी होगा। बात बहुत सापफ कटी है। रियासतों और ब्रिटिश प्रान्तों के आन्दोलनों को मिलाना जरूरी था, मजदूर वर्ग के लिए अपनी स्वतन्त्रा राजनीतिक भूमिका निबाहना जरूरी था। सारांश यह है कि जनसंघर्षों द्वारा ही सन्तुलन बदला जा सकता था और इन जनसंघर्षों को वामपंथी नेतृत्व ही सुसंगत रूप से आगे बढ़ा सकता था। यदि यह बात एक बार मान ली जाये कि राष्ट्रीय मोर्चे में नेतृत्व सम्बन्धी सन्तुलन बदलना है, तो इससे आवश्यक कार्यनीति स्वयं निर्धारित हो जाती है।

डॉ. श्याम लाल शर्मा ने अपनी पुस्तक ''समकालीन राजनीतिक चिन्तन का इतिहास मार्क्स से वर्तमान तक'' में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी को विज्ञान, उद्योग और तकनीकी प्रगति के चरम विकास का युग माना जाता है और इनका मानव–जीवन के समस्त क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव दिखाने का प्रयास किया है। वैज्ञानिक चिन्तन ने समाज–विज्ञानों तथा उनकी अध्ययन–प्रणालियों को भी प्रभावित किया है। प्रबोध–युग में, इससे प्रभावित होकर, बुद्धिवादी विचारकों ने विवेक, प्रगति तथा मानवीय व्यक्तित्व में अपनी दृढ़ आस्था अभिव्यक्त की। यह बुद्धिवाद भी अनेक रूपों में प्रकट हुआ है। यदि ब्रिटिश उपयोगितावाद उसका सन्तुलित रूप है तो विषुद्ध मार्क्सवाद अथवा समाजवाद को उसके व्यापक किन्तु उग्र स्वरूप के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जर्मन आदर्शवाद इसका अति–बुद्धिवादी स्वरूप है।

बुद्धिवादी चिन्तन का राजनीतिक विचारों पर दो भिन्न दिशाओं में प्रभाव पड़ा है। एक ओर उसे विज्ञान, वैज्ञानिक–पद्धति, और नवीन अध्ययन – प्रविधियों के रूप में राजनैतिक तथ्यों तथा प्रघटनाओं के विश्लेषण में अपनाया गया है, तो दूसरी ओर इनके विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त हुई हैं।

ब्ला. इ. लेनिन ने अपने ग्रन्थ ''उग्रवादी'' कम्युनिज्म एक बचकाना मर्ज में ने यह बहुरंगी चित्रा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि जब तक पूँजीवादी वर्ग को उलटा नहीं जाता, और उसके बाद जब तक छोटे पैमाने की अर्थ–व्यवस्था और छोटे पैमाने का माल का उत्पादन पूरी तरह नहीं मिट जाता, तब तक पूँजीवादी वातावरण, सम्पत्ति के स्वामियों की आदतें, और निम्न–पूँजीवादी परम्पराएं भी जीवित रहेगी, और वे केवल पार्लामेंट के क्षेत्रा में नहीं, बल्कि सामाजिक कार्य के प्रत्येक क्षेत्रों में, और मजदूर आन्दोलन के बाहर और अन्दर दोनों जगहों पर मजदूर के काम में बाध डालेगी, और यदि किसी भी कार्य क्षेत्रा की एक भी ''अप्रिय'' समस्या अथवा कठिनाई से पिंड छुड़ाने की, या उसकी ओर से आँखें मूँद लेने की कोशिश की गयी तो वह एक बहुत बड़ी गलती होगी, जिसका वाद में निश्चय ही पफल भोगना पड़ेगा। हमें बिना किसी अपवाद के काम के प्रत्येक क्षेत्रा पर अधिकार करने का अधिकार सीखना होगा। हमें सभी कठिनाइयों और सभी पूँजीवादी आदतों, रीति–रिवाजों और परम्पराओं पर काबू पाना सीखना होगा।

डॉ0 प्रभुदत्त शर्मा ने अपनी पुस्तक ''आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास'' (बेन्थम से अब तक) अपने विचार व्यक्त किये हैं कि लोकतान्त्रिक समाजवाद आधुनिक विश्व के दो मूल्यों (लोकतन्त्रा और समाजवाद) को एक साथ मिलाने का ऐसा प्रयोग है जिसे सपफलता मिल रही है। यदि लोकतान्त्रिक उच्छृखलता और साम्यवादी निरंकुशता के बीच कहीं समझौता है तो वह लोकतान्त्रिक समाजवाद में ही दिखायी देता है। इस विचारधारा ने स्वतन्त्राता और समानता के बीच एक उचित समन्वय स्थापित किया है तथा राज्य की सत्ता को सीमित और नियन्त्रित कर व्यक्तिगत स्वतन्त्राता की रक्षा की है। इसी प्रकार सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व को मर्यादित कर आर्थिक समानता का

ISSN-2230-7540

मार्गदर्शन किया है। लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा में लोकतन्त्रा और समाजवाद दोनों की बुराइयों से बचते हुए और दोनों की अच्छाइयों को ग्रहण करते हुए यथासम्भव एक आदर्श समन्वय स्थापित करने की चेष्ट की गई है।

डॉ0 जे. सी. पन्त और डा. एम. एल. सेठ ने अपनी पुस्तक ''आर्थिक विचारों का इतिहास'' में सामाजिक प्रगति तब ही कायम हो सकती है जबकि उत्पत्ति के मूल्य और इसके उत्पादन में खर्च की गयी श्रम की मात्राा के मध्य एक उच्च अंश का समन्वय हो। श्रम ही मूल्य का एकमात्रा निर्धारक नहीं हो सकता है, किन्तु वह इसका एक महत्वपूर्ण आधार होना चाहिए। जब तक श्रमिक को न्यायोचित मजदूरी नहीं मिल सकती है, अतः इन सब बुराइयों का अन्त तभी हो सकता है जबकि राज्य हस्तक्षेप करें। राष्ट्र की आर्थिक प्रगति के साथ–साथ राष्ट्रीय आय बढ़नी अवश्य है, परन्तु मजदूरों की मजदूरी जीवन–निर्वाह स्तर तक ही सीमित हो जाती है। कुल आर्थिक प्रगति की तुलना में मजदूरों की मजदूरी अप्रत्यक्ष रूप से घट जाती है, जबकि लाभ, ब्याज व लगान आदि सब बढ़ जाता है। इस प्रकार उत्पत्ति का वास्तविक साधन श्रम जो रात और दिन उत्पादन के कार्य में जुटा रहता है शेष साधनों की अपेक्षा कम पारिश्रमिक प्राप्त करता है। इस प्रकार स्वतन्त्रा अर्थ–व्यवस्था में खुलेआम श्रमिक वर्ग का शोषण चलता रहता है। अतः पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों का हित नहीं हो सकता है इसलिए इस शोषण का हस्तक्षेप के द्वारा रोके जाना चाहिए।

स्टडीज इन क्रिटिकल पिफलॉसपफी (1972) में हरबर्ट मारक्यूज ने पुनः छात्रों की भूमिका को महत्ता प्रदान की है। इस पुस्तक में उनका विचार है कि 'आज के जुझारू युवकों में अनुभवों का मूलगामी राजनीतिक संश्लेषण प्रकट हो रहा है–सम्भवतः यह मुक्ति की दिशा में पहला कदम है।' यहां एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ खड़ा होता है कि भिन्न–भिन्न राजनीतिक विचार प्रतिबद्धता वाले युवा समूह में क्या मूलगामी राजनीतिक संश्लेषण सम्भव है। वस्तुतः 'युवा' शब्द एक सामान्य शब्द है और 'युवा वर्ग' विभिन्न सामाजिक स्तरों के युवकों का समुच्च है। वर्गों में बंटे समाज में इनका सम्बन्ध भिन्न–भिन्न समुदायों–समूहों से होता है। इस प्रकार वर्गीय स्थिति में भिन्नता के पफलस्वरूप सामाजिक चिंतन और राजनीतिक के बारे में इनके विचार भी भिन्न–भिन्न होते है।

''जर्मनी में किसान युद्ध'' नामक पुस्तक में एंगेल्स ने स्पष्ट तौर पर सामन्तवाद–विरोधी संघर्ष में किसानों को प्रमुख शक्ति माना है। जोत के आधार पर किसानों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभक्त करते हुए उन्होनें क्रान्तिकारी किसान समुदाय वर्ग में केवल खेत मजदूर, छोटे और मझौले किसनों को ही माना है। किन्तु वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि किसानों की मुक्ति स्वयं इनके द्वारा नहीं हो सकती अपितु, वे मजदूर के हाथों ही अपनी मुक्ति की आशा कर सकते हैं। इसका कारण एंगेल्स के अनुसार, इनमें 'पहल' करने का आभाव होता है। उनके शब्दों में, 'अपनी अत्यन्त बिखरी हुई खेती तथा निरक्षरता के कारण किसी कारगर पहल का परिचय नहीं दें सकते। 'परन्तु पिफर भी ये किसान क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेतृत्वकारी वर्ग के 'किसी भी सूरत में सशक्त तथा अपरिहार्य साथी होंगे'। स्टालिन का भी मत है कि तीसरी दुनिया का राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन सारतः किसान आन्दोलन होगा। उनके शब्दों में, पकिसान–जनता राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य सेना है, किसान–सेना के बिना किसी भी प्रकार का शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं हो सकता है। जब कहा जाता है कि सारतः राष्ट्रीय समस्या किसान समस्या है, तब उसका यही अर्थ होता है।

सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा

नववामपंथ इस शताब्दी के छठे दशक में मौजूदा सामाजिक राजनीतिक संस्थाओं व सम्बन्धों के विरूद्ध उठ खड़ा हुआ एक विरोध आंदोलन है। यह आंदोलन, प्रमुख रूप से, मौजूदा पूँजीवादी सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था के विरोध में था। वास्तव में, सन् 1960 तक अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट के दुष्परिणाम स्पष्ट होने लगे थे। उपभोक्ता वस्तुओं की कमी से लोगों के जीवन स्तर में गिरावट आ गई थी और बेकारी बढ़ने लगी थी। पूँजीवादी व्यवस्था को इस संकट का मूल कारक समझा जाने लगा था।

परिणामतः यह विरोध आंदोलन तत्कालीन व्यवस्था (समाज) में व्याप्त नौकरशाही, गैर मानवावादी प्रवृत्तियों, सैनिक औद्योगिक जटिलता, आक्रामक, विदेशनीति, राजनीतिक दमन व उत्पीड़न आदि को पूर्णतः समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हो उठा। यांत्रिाक जीवन और मानसिक भूख से त्रास्त, अभाव व बेरोजगारी से ग्रस्त जीवन में सुधार के लिए कुछ अमरीकी बुद्धिजीवियों, दार्शनिकों, समाज–शास्त्रियों और राजनीतिज्ञों ने एक तीसरा विकल्प प्रस्तुत किया। उनकी धारणा थी कि दक्षिण पंथ पहले से ही असपफल था, और जब वामपंथ भी असपफल सिद्ध हो चुका है।

बेरियन के मतानुसार, 'नववामपंथ, राजनीतिक दृष्टि से अलग–अलग मार्क्सवादी–स्टालिनवादी कट्टरता (रूढ़िवादिता) एवं तत्कालीन उदारवाद के 'खोखले मिथ्याचार' के परे, कुछ दुविध के साथ, तीसरे विकल्प की खोज में अराजकतावाद और शांतिवाद के करीब है। नव–वामपंथ से पूर्व, भूमिका के रूप में, 'वामपंथ' का अभिज्ञान आवश्यक है। 'वामपंथ' शब्द का उद्भव एवं प्रचलन फ्रांस में 18वीं सदी के सामाजिक राजनीतिक आंदोलनों के दौरान हुआ।

सी. राइट मिल्स के अनुसार, 'वामपंथ का आशय उन रचनात्मक आलोचनाओं, रपटों और समाज के सिद्धान्तों से है जो कि, कुछ अन्य मामलों में राजनीतिक मांगो और कार्यक्रमों के रूप में परिलक्षित होती है, और जो पश्चिमी सभ्यता के मानवतावादी चिरकालिक आदर्शो– विवेक, स्वतंत्राता और न्याय द्वारा निर्देशित होती है। इस प्रकार वामपंथ, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आलोचना तथा उन दोनों के द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों और मांगों को सम्बद्ध करता है। प्रारम्भ में, वामपंथ से जनतंत्रावादियों एवं समाजवादियों का बोध होता था यद्यपि, नववामपंथ की शुरूआत इंग्लैण्ड से हुई, नववामपंथियों का विश्लेषण करते हुए **ई.जी. जिनोविज** का मत है कि चौथे और पांचवें दशक के वामपंथियों से अपने को भिन्न बताने की दृष्टि से ही ये अपने को नववामपंथी कहते थे। दोनों के बीच के अन्तर को स्पष्ट करते हुए इनका कहना है कि, 'अपने को

ISSN-2230-7540

वामपंथी कहलाने वाले इन आंदोलनकारियों तथा पुराने वामपंथियों में मूल अन्तर यह था कि जहाँ उनका आंदोलन साम्यवाद, विभिन्न प्रकार के समाजवाद और कुछ सीमा तक अराजकतावादी श्रेणीवाद की विचारधाराओं के साथ जुड़ा हुआ था, वहीं नववामपंथी पूँजीवादी संस्कृति और मार्क्सवाद दोनों के ही आलोचक थे।

नववामपंथी अपनी 'स्वतंत्रा विचारधारा होने का दावा करते हैं जबकि यह अनेक विचारधाराओं यथा – अराजकतावाद, अस्तित्ववाद, अतियथार्थवाद, नयडवाद आदि से प्रभावित है। इस कारण नववामपंथ को एक सुनिश्चित विचारधारा के अन्तर्गत परिभाषित करना कठिन है। **यंग** के मतानुसार ''यह आंदोलन का आंदोलन है, जबकि **मैथ्यू स्टाल्ज** के विचार में यह मात्रा 'विरोध की राजनीति' है। इस संदर्भ में **रिचर्ड गार्डन** का कथन दृष्टव्य है कि, 'नववामपंथ एक नैतिक आंदोलन था जिसने एक समन्वित क्रान्तिकारी सिद्धांत एवं व्यवहार विकसित करने का प्रयास नहीं किया।

सातवें दशक के शुरूआती दौर में हुए हिप्पी आंदोलनो और नववामपंथी आंदोलनकारियों के बीच भी समता खोजी गई है किन्तु इसमें कोई विशेष दम नहीं है। यद्यपि दोनों ही विकसित पूंजीवादी समाज के जीवन मूल्यों, संस्कृति, उपभोक्ता समाज की पाबन्दियों, वर्जनाओं के विरूद्ध (व्यक्ति के लिए) उन्मुक्त (समाज) जीवन दर्शन के पक्षपाती थे, तो भी, जहाँ हिप्पियों का राजनीति से कोई सरोकार नहीं था, वहीं नववामपंथी अमरीकी सरकार की नीतियों का खुलकर विरोध करते थे।

यहाँ यह बताना महत्वपूर्ण होगा कि पूँजीवाद के चरम स्वरूप साम्राज्यवाद का नववामपंथ ने खुला विरोध किया था। हिप्पी पूंजीवादी संस्कृति से विमुख हो अपनी स्वतंत्रा पहचान के लिए एक नये समुदाय के निर्माण पर जोर दिये जबकि नववामपंथ पूँजीवादी समाज को बदलकर नये समाज के निर्माण पर बल देता था। वस्तुतः हिप्पी पलायनवादी थे जबकि नववामपंथी विकृत पूँजीवादी समाज के बेहतर विकल्प के इच्छुक। वस्तुतः 'नववामपंथ' एक अत्यन्त, ''विकेन्द्रित आंदोलन' था जिसने, 'सहभागी लोकतंत्रा पर बल दिया। नववामपंथवादियों की 'समाजवाद की अवधारणा' न तो ब्रिटिश लेबर पार्टी की समझौतावादी राजनीति से मेल खाती थी और न ही सोवियत साम्यवाद का ही समर्थन करती थी। यह औद्योगिक समाज के पूर्ण निषेध पर आधारित थी। नववामपंथ के विशिष्ट सिद्धान्तकार–विचारक हरबर्ट मारक्यूज के अनुसार, यह कुछ अपवादों के साथ, रूढ़िवादी अर्थ में, मार्क्सवादी की अपेक्षा नवमार्क्सवादी है जो, निश्चित तौर पर, तीसरी दुनिया के क्रान्तिकारी आंदोलनों तथा माओं के विचारों से प्रभावित है। इसके अलावा यह नव अराजकतावादी प्रवृत्तियों को भी अन्तर्निष्ट करता है। कुछ अपवादों के साथ, पुराने मजदूर वर्ग को क्रान्ति का वाहक स्वीकार नहीं करता है। पुराने वामपंथी दलों, तथा उनकी विचारधारा के प्रति इसका गहरा संदेह इसे चरित्रा प्रदान करता है।

नवीन वामपंथ की क्रान्ति सम्बन्धी विचारधारा

बीसवीं शताब्दी के राजनीतिक, चिन्तन को हरबर्ट मारक्यूज की प्रमुख देन, उनकी क्रान्ति सम्बन्धी अवधारणा है। यह उन्हें शास्त्रीय मार्क्सवाद की परम्परा से अलग करती है और उनकी स्वतंत्रा पहचान स्थापित करती है। अपनी क्रान्ति सम्बन्धे अवधारणा की सैद्धान्तिक जीवन पर ही वे एक ऐसी नयी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के निर्माण की सम्भावनाओं की तलाश करते हैं जो मौजूदा परिस्थितियों का विकल्प बन सकें और विकास की नयी दिशा तय कर सकें।

क्रान्ति, पूँजीवादी समाज की ऐतिहासिक परिस्थितियों और मूल भूत मानव आवश्यकताओं व शक्तियों के बीच के अन्तविरोधों का अनिवार्य परिणाम है। यदि सार और अस्तित्व परस्पर विरोधी हों और दोनों के युग्मन का वास्तविक बोध मानव आचरण का स्वतंत्रा कार्य हो, तब जहाँ तथ्यगत परिस्थितियाँ मानव सत्य को पूर्ण विकृति की ओर अग्रसर करती हों, वहाँ इन तथ्यगत परिस्थितियों का पूर्ण उन्मूलन अनिवार्य कार्य होगा।

निश्चय ही मानव सत्य पर अनवरत बल, आमूल क्रान्ति के लिए प्रेरणादयाक है क्योंकि पूँजीवाद की वास्तविक स्थितियों की विशेषता न केवल आर्थिक या राजनीतिक संकट होती है अपितु मानव सत्व का विध्वंश भी होता है–और यही अन्तरदृष्टि प्रारम्भ से ही मात्रा राजनीतिक एवं आर्थिक सुधारों को अस्वीकार कर, बिना शर्त समग्र क्रान्ति के द्वारा मौजूदा परिस्थितियों के पूर्ण उन्मूलन की मांग करती है।

नववामपंथी समग्र क्रान्ति में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि पूँजीवादी समाज शोषण, दमन एवं अलगाव पर आधारित है जो सम्पूर्ण मानव जाति के लिए विध्वंसकारी है। इससे मुक्ति के लिए समग्र क्रान्ति ही एक मात्रा उपाय है। मात्रा आर्थिक एवं राजनीतिक सुधारों के द्वारा समाज में गुणात्मक परिवर्तन नही लाया जा सकता और नहीं मौजूदा उन परिस्थितियों का विध्वंस ही किया जा सकता है जो मानव सत्व को विकृत करती है।

मौजूदा तथ्यगत विकृत परिस्थितियाँ पूँजीवादी समाज की देन है इसलिए इस समाज के परिवर्तन के, शोषण, दमन और अलगाव की प्रवृत्ति का भी खात्मा नहीं किया जा सकता। नवीन वामपंथियों की धारणा में मौजूदा समाज के अन्तर्गत टैकनोलोजी, उत्पादकता और समस्त सम्पत्ति का वर्तमान स्वरूप सामाजिक न्याय और सच्ची लोकतंत्रा से मेल नही खाता। उनका कहना है कि यथास्थिति के अन्दर, भौतिक दरिद्रता के उन्मूलन की सम्भावना तो विद्यमान है, किन्तु श्रम के उन्मूलन, शान्ति, आनन्द की सम्भावना नहीं है। वह मानते हैं कि पूँजीवादी समाज के अन्तर्गत केवल एक छोटा सा समूह उत्पादन के समस्त भौतिक साधनों को नियंत्रित करता है, और बहुसंख्यक जनता उत्पादन के साधनों और वास्तविक लाभों से वंचित ही रह जाती है। पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम का निष्पादन व्यक्ति की क्षमताओं और आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होता, अपितु मुनापफा परक उत्पादन प्रक्रिया की मांग के अनुसार होता है। ऐसी स्थिति में सुख इस व्यवस्था में सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि

सुख उपभोग के क्षेत्रा में प्रतिबन्धित है।

जब मूल्य के पूँजीवादी निगम की अप्रत्यक्ष आवश्यकता के अनुसार सामाजिक श्रम का वितरण अग्रसर होता है तब उत्पादन एवं उपभोग, श्रम और आनन्द के तार्किक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। मौजूदा समाज–व्यवस्था को अतार्किक मानते हुए नवीन वामपंथियों का मत है कि विज्ञान और तकनीकी प्रगति का उच्चतर विकास व्यक्ति के विकास की संभावनाऐं अवश्य प्रस्तुत करते हैं किन्तु उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के होने के कारण यह समाज को दो हिस्सों एक छोटा सा परजीवी कार्य और सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित बहुसंख्यक जनता में विभक्त कर देता है और इसी कारण व्यक्ति की अपार सम्भावनाओं को प्रतिबन्धित भी कर देता है।

पूँजीवादी आर्थिक शक्तियाँ ही दासता और गरीबी उत्पन्न करती हैं तथा वर्ग विरोध को तीव्र करती हैं। मौजूदा व्यवस्था को समाप्त कर नयी व्यवस्था का सृजन क्रान्तिकारी परिवर्तन के माध्यम से ही संभव है। पफलतः क्रान्ति आवश्यक रूप से भौतिक एवं बौद्धिक संस्कृति के एक निश्चित स्तर, अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर आत्मचेतनशील और संगठित मजदूर वर्ग तीव्र वर्ग संघर्ष की मांग करती है, इसके अलावा क्रान्तिकारी स्थितियों में सचेतन सक्रियता के साथ समाजवादी लक्ष्य का होना भी अनिवार्य तत्व होता है।

नवीन वामपंथी पूँजीवाद के विरूद्ध क्रान्ति की अनिवार्यता को विश्व–व्यापी प्रक्रिया के रूप में ग्रहण करते हैं। क्रान्ति की सपफलता, वह स्वाभाविक या यंत्रावत क्रिया के रूप में नहीं देखते बल्कि संगठित मजदूर वर्ग के अन्तर्राष्ट्रीय एकता और चेतनशीलता में देखते हैं। क्यों`कि, एक चेतनशील और संगठित अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग ही वर्ग–संघर्ष की चरम सीमा पर पहुँच कर उसकी परिणित क्रान्ति में कर सकता है। चेतनशीलता और संगठन के अभाव में क्रान्ति की सपफलता सन्देहास्पद हो जाती है। कम्युनिस्ट क्रान्ति की अपरिहार्यता को स्वीकार कर लेते हैं। जिसका वाहक मजदूर वर्ग होगा।

नवीन वामपंथी क्रान्ति से एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कर सृजन करना चाहते हैं जो मौजूदा श्रम प्रणाली को समाप्त करे और उत्पादन के साधनों को सामूहिक स्वामित्व के अधीन करे ताकि समाज में प्रत्येक व्यक्ति का समुचित विकास सम्भव हो सके। यद्यपि एक आन्दोलन के रूप में अस्तित्ववाद लुप्त हो चुका है, किन्तु मानव की आत्मपरक प्रवृत्तियाँ निरशेष नहीं हुई हैं। वे राज्य और समूहों में संकेन्द्रित असीम शक्ति, विज्ञान और प्रविधि द्वारा नियन्त्राण, पूँजी के केन्द्रण तथा विभिन्न प्रकार की तानाशाहियों के होते हुए भी प्रकट होती रही है। समृद्ध देशों से संयुक्त राज्य में हिप्स्टर बीट निक्स और हिप्पी जैसी व्यक्तिपरक प्रवृत्तियाँ इसी बात की घोतक है। समाज, संस्कृत, समृद्वि और सभ्यता के प्रति इनका अलगाव प्रतिशोध्पूर्ण है। समृद्व संयुक्त राज्य मे ही, वहाँ के दलित पतित वर्गो के प्रति सहानुभूति से परिपूर्ण, 'नवीन वामपंथ' सामने आया जो वास्तविक एवं सहभागी प्रजातन्त्रा लाने का पक्षपाती है। यह पूँजीवादी सभ्यता और रूढ़िवादी मार्क्सवाद दोनों का विरोधी है। इसने रचनात्मक रूप से कार्य किया है और वह अनेक विश्वविद्यालयों में 'छात्रा–शक्ति' बनकर अभिव्यक्त हुआ है। वह स्वतंत्राता और मानव–मूल्यों की रक्षा के लिए अव्यवस्था उत्पन्न करने से भी नहीं हिचकिचाता। वह वर्तमान शिक्षण व्यवस्थाओं, पाठयक्रमों और पुस्तकों, समाजविज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषयों, समाज रचनाओं आदि को विशिष्ट उच्च वर्गो का वर्चस्व बनाए रखने की स्थायी योजना मानता है। उसने युद्धों को भी अमेरिकी पूँजीपतियों और शीर्षस्थ नेताओं की यथास्थिति बनाए रखने वाली चाल माना थें

क्रांति के प्रमुख प्रतिनिधि और उनके साधन

किसी भी समाज में, निर्दिष्ट समय में, नवीन आर्थिक सम्बन्ध ही नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करते हैं। वास्तव में, आर्थिक–सम्बन्धों का परिवर्तन ही नयी सामाजिक व्यवस्था का आधार बनता है, और नये मूल्यों–राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक की स्थापना करता है, और इस प्रकार के मूलगामी परिवर्तनों का संज्ञान 'क्रान्ति' से होता है। निर्दिष्ट समय में जो आर्थिक–सम्बन्ध जिस वर्ग के हितों की जितनी मजबूती से रक्षा और पोषण करता है, उन आर्थिक–सम्बन्धों को वह वर्ग उतनी ही मजबूती से बनाये रखने का प्रयास करता है।

दूसरी ओर, लाभों से वंचित वर्ग उतनी ही तेजी से आर्थिक सम्बन्धों को अपने पक्ष में परिवर्तित करने के लिए संघर्ष करता है। पफलतः नयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए दो नितांत परस्पर विरोधी हित वाले वर्गों के मध्य संघर्ष का होना अनिवार्य एवं स्वाभाविक हो जाता है।

किसी निश्चित सामाजिक व्यवस्था में, क्रान्ति का होना, जहाँ क्रान्तिकारी परिस्थितियों और ऐतिहासिक अनिवार्यता पर निर्भर करती है वहीं क्रान्ति की सपफलता की संभावना क्रान्ति के नेतृत्वकर्ता वर्ग और क्रान्तिकारी तत्वों पर निर्भर करती है। क्रान्तिकारी नेतृत्व अथवा एक सुनिश्चित संगठित क्रान्तिकारी वर्ग के अभाव में क्रान्ति की सपफलता की आशा निर्मूल सिद्ध होती है। संभवतः इसी कारण मारक्यूज ने इस बावत अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार किया है।

केवल रंग एवं जाति के आधार पर किसी भी समाज में, किसी जाति को शोषक या शोषित घोषित करना, न केवल क्रान्ती की अवधारणा एवं इसके 'मूल' से खिलवाड़ करना है। क्रान्ति का वाहक, समाज का वहीं हिस्सा हो सकता है जो कि अभी तक एक आयामी समाज का अंग नहीं बन पाया है। दूसरे शब्दों में, उच्चतम विकसित तकनीकी समाज में क्रान्ति का वाहक, इस समाज के लाभों से वंचित वर्ग है और जिनका समाकलन इस समाज में अभी तक नहीं हो पाया है।

सम्भवतः, मारक्यूज अब यह स्थायी रूप से मानकर चलते हैं कि आधुनिक पूँजीवाद समाज में, लोकतांत्रिक, प्रक्रिया के अन्तर्गत, समाज का सभी वर्ग लाभान्वित नहीं हो सकता। इसी कारण, समाज का कुछ हिस्सा सदैव ही असन्तुष्ट रहेगा जिन्हें ये व्यवस्था के 'क्रियाशील निषेध' मानते हैं। किन्तु समाज के इस वर्ग के पास, समाजवादी समाज की स्थापना हेतु न तो संगठन ही है, और न ही इनमें, 'यथेष्ट चेतना' ही

ISSN-2230-7540

विकसित हो पायी है। संगठन और अनिवार्य चेतना के अभाव के बावजूद मारक्यूज, समाज के इन्हीं घटकों को क्रान्ति का वाहक वर्ग स्वीकार करते हैं। किन्तु, मारक्यूज इन घटकों–समाज के जातीय और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक, स्थायी बेरोजगार और अंकिचन लोगों– के वर्गीय ढांचे पर विचार नहीं करते हैं।

इस तथ्य पर भी विचार नहीं करते कि इस वर्ग में गरीबी, बेकारी आदि समस्याओं का क्या स्वरूप एवं स्थिति है। आर्थिक आधारों पर समाज के इस वर्ग का विश्लेषण प्रस्तुत न कर और केवल इस कारण इस वर्ग को क्रान्ति का वाहक या अभिकर्ता स्वीकार कर लेना कि समाज का यह हिस्सा, एक आयामी समाज में प्रजातांत्रिक लाभों से वंचित है अप्रत्यक्ष रूप से क्रान्ति के मूल कारणों एवं आधारों को न केवल अनदेखा करना है अपितु वर्ग संघर्ष और वर्ग चेतना को भी नजर अंदाज करना है और, इस प्रकार मारक्यूज क्रान्ति के द्वारा नये आर्थिक–सम्बन्धों की स्थापना के विरूद्ध, मौजूदा आर्थिक–सम्बन्धों पर आधारित व्यवस्था में ही इस प्रकार का सुधार करना चाहते हैं जिससे सभी वर्ग लाभान्वित हो सकें कि यह व्यवस्था आर्थिक लोकतन्त्रा का संकेत देती है, न कि क्रान्ति का। मौजूदा समय में संगठित श्रमिक वर्ग यथास्थिति को बनाये रखने के कार्य में लगा हुआ है। उनके अनुसार, जितना ही उत्पादन की भौतिक प्रक्रिया में श्रम की हिस्सेदारी कम होती गयी है उतनी ही ज्यादा सामाजिक एवं राजनीतिक कारकों के रूप में बौद्धिक दक्षता एवं क्षमता का महत्व बढ़ता गया है।

वस्तुतः जातीय और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक वर्ग, स्थायी बेरोजगारों एवं अकिंचन लोगों से है जो प्रजातांत्रिक प्रक्रिया से अपने को असम्बद्ध रखते हैं। जो भी हो, असंगठित और अप्रतिबद्ध युवा वर्ग से पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ पफेंकने या सहयोगी होने की संभावना करना अपने आप में एक कल्पना ही है।

वस्तुतः पूंजीवादी व्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक है कि एक शक्तिशाली जन–संगठन का निर्माण हो, जो राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्तों से लैस एक स्पष्ट सामाजिक दिशा निर्धारित कर सकें। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि विकसित औद्योगिक पूंजीवादी देशों में युवाओं का विद्रोह और आधुनिक क्रान्तिकारी आंदोलनों में उनकी सहभागिता कोई नया तत्व नहीं है।

किसी प्रतिबध राजनीतिक सिद्धान्तों के युवाओं को क्रान्तिकारी आन्दोलनों का वाहक या नेतृत्वकर्ता मानना उनमें अराजक प्रवृत्तियों को पैदा करना होगा। 1968 के पूर्व मारक्यूज, कमोवेश क्रान्ति के वाहक और अभिकर्ता शक्तियों के रूप में बुद्धिजीवियों राष्ट्रीय एवं जातीय अल्पसंख्यक वर्ग और अकिंचन लोगों को ही लेते हैं जिनका समाकलन पूँजीवादी व्यवस्था में अभी तक नहीं हो पाया है।

किन्तु 1968 के बाद वे इसमें छात्रों को भी जोड़ लेते हैं। वस्तुतः 68 के पूर्व उनका विश्वास था कि उत्पादन शक्तियों के उच्चतम विकास ने एक ऐसे समग्रवादी व्यवस्था को जन्म दिया है जिसमें समाज का सभी वर्ग कमोवेश भागीदार है– खासकर मजदूर वर्ग भी लगभग समाकलित हो चुका है और अपनी क्रान्तिकारी क्षमता भी खो चुका है।

कोई आकस्मिक घटना ही समाज के बुद्धिजीवियों तथा अप्रतिष्ठित समूहों के सहयोग से मूलगामी सामाजिक परिवर्तन के लिए मार्ग प्रशस्त कर सकती है। परम्परागत मजदूर वर्गों की सरंचना में, शारीरिक श्रमिकों की संख्या घटती गयी है और इनका स्थान सपफेदपोश या कुशल श्रमिकों, तकनीशियन, अभियन्ता और विशेषज्ञों ने ले लिया है। इन पढ़े–लिखे कुशल और दक्ष मजदूरों ने आधुनिक उत्पादन प्रक्रिया में अपनी महत्ता स्थापित कर ली है और उत्पादन प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करने में सक्षम हैं।

इन्हें 'नव मजदूर वर्ग' की संज्ञा देते हुए मारक्यूज का विश्वास है कि अपनी स्थिति की गुरुता के कारण यह वर्ग उत्पादन–सम्बन्धों और दंगों को पुनर्निर्देशित, पुनः संगठित और विघटित कर सकता है। किन्तु, चूँकि आधुनिक पूँजीवाद में ये पूरी तौर पर समाकलित हो चुके हैं और पूर्णतः सन्तुष्ट हैं।

समाज की बदली हुई परिस्थितियों में यह नव–मजदूर वर्ग अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण– जो उच्च तकनीकीकृत समाज के विकास का प्रतिपफल है – उत्पादन के सम्बन्ध और ढंग को विघटित, पुर्नगठित और अनुप्रेषित कर सकता है। औद्योगिक समाज में इसी कारण बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण बन गयी है। उच्चतम तकनीकी और विज्ञान का अभूतपूर्व विकास शास्त्रीय पूँजीवाद के गुण एवं चरित्रा में युगांतकारी परिवर्तन कर देता है, इस कारण बदली हुई परिस्थितियों में परम्परागत वर्गो का विरोध मिट जाता है और नये वर्गो, समूहों, तबकों का विरोध प्रकट हो जाता है। यही नये वर्ग अपने सीमित संगठन, प्रसार कमजोरियों के बावजूद मौजूदा व्यवस्था को सशक्त चुनौती देते हैं और इसके विकल्प के रूप में नयी व्यवस्था के अग्रदूत बनते हैं। कुछ सीमाओं के साथ समाज का यह अग्रगामी दस्ता, युवा बुद्धिजीवी, असंगठित मजदूर, छात्रा, हिप्पी, तकनीकी लोग और प्रजातांत्रिक लाभों से वंचित समाज का निम्न तबका होता है, जो अलग–अलग कारणों से व्यवस्था का विरोध करता है, और यदि आपस में एकजुट हो जाये तो नयी व्यवस्था को जन्म देते हैं।

उपसंहार

नवीन वामपंथियों की क्रान्ति की नयी अवधारणा शास्त्रीय मार्क्सवादी अवधारणा से भिन्न है। उनके अनुसार आधुनिक समाज में मूलगामी परिवर्तन या क्रान्ति के पक्ष में संघर्ष औद्योगिक मजदूर वर्ग की संगठित राजनीतिक कारवाई पर नहीं अपितु बौद्धिक वर्ग पर निर्भर है।

'नवीन समाज' की स्थापना के लिए मारक्यूज अपने चिंतन के प्रारम्भिक दौर में पफासीवादी विचाराधरा के ऊपर कट्टट्टर आघात करते हैं और इसे उदारवाद का चरम विकृत रूप मानते हैं। पफासीवाद/नाजीवाद को पूंजीपति–वर्ग के वर्गीय हितों की राजनीतिक अभिव्यक्ति मानते हुए

ISSN-2230-7540

उनका मत है कि यह पूंजीवादी अर्थ–व्यवस्था पर आधारित समाज के विकास की चरमसीमा को अभिव्यक्त करता है। अतः इसके अस्तित्व को पूंजीवादी काल के हर चरण में देखा जा सकता है। उदारवाद, उस पूंजीवादी स्वतंत्रा बाजार के अर्थतंत्रा का सिद्धांत जिसे राज्य का हस्तक्षेप किसी भी स्थिति में मान्य नहीं है। इसके विपरीत पफासीवादी (सर्वसत्तावादी) पूंजीवाद स्वतंत्रा बाजार की अर्थ व्यवस्था का वह सिद्धान्त है जिसे अपनी आलोचना को रोकने तथा अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। यह पूँजीवाद की आर्थिक प्रक्रिया को समयानुकूल बनाने का, अर्थात् पूँजीवादी अर्थतंत्रा को संकटों से उबारने का प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में उदारवाद, पूँजीवाद के मुक्त प्रतियोगिता काल की विचारधारा है तो पफासीवाद, पूंजीवाद के एकाधिकार (साम्राज्यवादी) दौर की। मारक्यूज, उदारवाद के प्रारम्भिक स्वरूप की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वह ज्ञान, विवेक, नैतिकता आदि का पोषक होता है किन्तु उदारवाद का वर्तमान स्वरूप, पफासीवाद, इन प्रशंसित तत्वों को ध्वंसकर ही आगे बढ़ता है। अतः यह पफासीवाद का पात्रा है।

नवीन वामपंथी सुख, स्वतंत्राता एवं व्यक्ति की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने में 'विवेक' पर विशेष बल देते हैं। विवेक वर्तमान समाज की अतार्किकता के विरूद्ध एक तर्कसम्मत समाज की स्थापना का पथ प्रदर्शित कर सकता है। प्रश्न उठता है कि क्या नवीन वामपंथी उदारवादी समाज की पुर्नस्थापना करना चाहते थे अथवा नये समाज का निर्माण? मारक्यूज उदारवादी समाज की आलोचना इस कारण करते हैं कि उदारवादी समाज की स्थापना जिन मूल्यों और सिद्धान्तों के आधार पर हुई थी और जिन आदर्शों और वैयक्तिक अधिकारों की रक्षा करने का लक्ष्य उसने अपने समक्ष रखा था, वह उसी से विमुख हो गया। इतना ही नहीं, बल्कि उदारवादी समाज ने ही पफासीवाद को जन्म दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स, पेरिस कम्यून, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1980, पृ. 116.

माओ–त्से–तुंग, ''चीनी क्रान्ति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी'', चुनी हुइ क्रतियाँ, दूसरा ग्रन्थ, अनु0 राम आसरे, विचार प्रकाशन, कानपुर, 1969, पृ. 394–95.

लेनिन ब्ला. इ. राज्य और क्रान्ति प्रगति प्रकाशन, मास्को।

अपफनास्मेव व. ग., मकारोवा म.पफ., मिनायेव ल.म. वैज्ञानिक समाजवाद के मूलतत्व, प्रगति प्रकाशन, मास्को।

भारत के अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद खण्ड–एक रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पटना।

डॉ. श्याम लाल शर्मा समकालीन राजनीतिक चिन्तन का इतिहास मार्क्स से वर्तमान तक मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ नयी दिल्ली।

लेनिन ब्ला. इ. ''उग्रवादी'' कम्युनिज्म एक बचकाना मर्ज पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, लिमिटेड आसपफ अली रोड, नई दिल्ली।

आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास (बेन्थम से अब तक) डॉ. प्रभुदत्त शर्मा कॉलेज बुक डिपो जयपुर नई दिल्ली।

आर्थिक विचारों का इतिहास डॉ. जे. सी. पन्त, डॉ. एम. एल. सेठ लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–3।

मारक्यूज हरवर्ट ''स्टडीज इन क्रिटिकल पिफलासपफी, क्लासिकल पब्लिशिंग कं0 1972, पृ. सं0 71

जर्मनी में किसान युद्ध, एंगेल्स, प्रगति प्रकाशन मास्को दूसरा संस्करण, 1975, पृ0–140–141.

सामाजिक वर्ग और राजनीतिक संघर्ष, रोमानो लेडा, विचार प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण, 1968, पृ0 25.

Corresponding Author

KM. Shalu*

Research Scholar, Chaudhary Charan Singh University, Meerut, India

E-Mail – dr.shalu.psingh@gmail.com